ARYAVART SHODH VIKAS PATRIKA
RNI TITLED NO. UPBIL04292
RNI REG. NO. UPBIL/2014/66218 PP. NO.- 225-230

ISSN NO.-2347-2944 (Print)
e-ISSN NO.-2582-2454 (Online)
Vol.-15, No.- I, Issues-23, YEAR- Jan.-March-2022

जनजातीय नृत्य में समाहित भारतीय लोक संस्कृति

सुप्रिया संजू

असि0 प्रोफेसर– संस्कृत विभाग, (हरियाणा) भारत

Received- 01.03.2022, Revised- 06.03.2022, Accepted - 09.03.2022 E-mail: supriyasanju@gmail.com

सारांशः – *किसी भी देश के विकास में कला का महत्वपूर्ण योगदान होता है। यह साझा दृष्टिकोण, मूल्य, प्रथा एवं एक निश्चित लक्ष्य को दिखाता है। सभी आर्थिक, सामाजिक एवं अन्य गतिविधियों में संस्कृति एवं रचनात्मकता का समावेश होता है। विविधताओं का देश, भारत अपनी विभिन्न संस्कृतियों के लिए जाना जाता है। भारत में गीत–संगीत, नृत्य, नाटक–कला, लोक परंपराओं, कला–प्रदर्शन, धार्मिक–संस्कारों एवं अनुष्ठानों, चित्रकारी एवं लेखन के क्षेत्रों में एक बहुत बड़ा संग्रह मौजूद है जो मानवता की 'अमूर्त सांस्कृतिक विरासत' के रूप में जाना जाता है।*

भारत में तमाम संस्कृतियों के मुकाबिल जनजातीय संस्कृति की अपनी विशिष्ट पहचान है। जनजातीय संस्कृति के पृष्ठों में मनुष्य के उत्थान पतन की कहानियां छिपी हुई हैं। जनजातीय समुदाय के जन्मजात गुणधर्मों में सरलता, सहजता, सामुदायिकता, अपरिग्रह, निश्छलता, बन्धुता, सच्चाई, ईमानदारी, परिश्रमशीलता, सामूहिकता, समानता व प्रकृति से घनिष्ठता की भावना विद्यमान है। जनजातीय समाज में वास्तविक दुनिया के पल गुजारने पर उनकी भव्यता, दिव्यता व जीवतंता का अहसास होता है। जनजातीय दृष्टिकोण उपयोगितावादी तथा विचारधारा 'जीओ और जीने दो' की पक्षपाती है। मुख्य धारा से दूर जंगलों में निवास करने वाली आदिम जनजातियां आज भी सांस्कृतिक विलक्षणताओं के साथ जीवन यापन कर रही है। जनजाति समाज को घुमन्तु समाज भी कहा जाता है क्योकि वे जीवन यापन हेतु विभिन्न क्षेत्रों में घूम घूम कर अपने कला के माध्यम से जीवन यापन करते हैं और यही कारण है कि उनकी संस्कृति आज भी उतनी ही शुद्धता के साथ जीवित है।

कुंजीभूत शब्द– आर्थिक, सामाजिक, गतिविधियों, रचनात्मकता का समावेश, गीत–संगीत, नृत्य, नाटक–कला।

सम्पूर्ण विश्व में भारत अपनी संस्कृति और परंपरा के लिये प्रसिद्ध है। वर्तमान में जहाँ जीवन शैली आधुनिक हो रही है, वहीं भारतीय लोग आज भी अपनी परंपरा और मूल्यों को बनाए हुए हैं। विभिन्न संस्कृति और परंपरा के लोगों के बीच की घनिष्ठता ने एक अनोखा देश, 'भारत' बनाया है। यहाँ की संस्कृति यहाँ के मौसम और यहाँ की लोक कलाओं में प्रमुख रूप में प्रतिबिंबित होती है। हिमालय की बर्फीली चोटी से लेकर दक्षिण के दूर दराज में खेतों तक, पश्चिम के रेगिस्तान से पूर्व के नम डेल्टा तक, सूखी गर्मी से लेकर पहाडियों की तराई के मध्य पठार की ठण्डक तक, भारतीय जीवनशैलियां और भारतीय संस्कृति की भव्यता स्पष्ट रूप से दिखाई देती हैं। भारतीयों के परिधान, भोजन और आदतें उसके उद्भव के स्थान के अनुसार अलग अलग होते हैं। विभिन्न ऐतिहासिक परंपराओं से गुजरकर और विभिन्न भौगोलिक परिस्थितियों में रहकर भारत के भिन्न–भिन्न समुदायों ने भारत की महान मानवीय संस्कृति के भिन्न–भिन्न पक्षों से साक्षात किया है।

मानव समाज में ऐसा कोई व्यक्ति नहीं जो संस्कृति विहीन हो। अपनी आवश्यकता के अनुरूप मनुष्य अपने समूह की संस्कृति का अपने जन्म से ही भागीदार होता है और वह समाज के सदस्य के रूप में संस्कृति को अर्जित करता है। उसी समाज में मनुष्य व्यवहार सीखता है और यही व्यव्हार जब परिपक्व हो जाता है तो उसकी संस्कृति के रूप में परिवर्तित हो जाती है। मानव व्यव्हार का निर्माण उसके व्यक्तिगत भावों , परिस्थितियों एवं आस – पास के वातावरण से प्रभावित होता है , जो उसके समूह, परिवेश एवं वर्ग को प्रदर्शित करता है।

अनुरूपी लेखक/संयुक्त लेखक

ISSN NO.-2347-2944 (Print)
e-ISSN NO.-2582-2454 (Online)
Vol.-15, No.- I, Issues-23, YEAR- Jan.-March-2022

अपनी पुरातन विरासत रूपी संस्कृति को ग्रहण करके मनुष्य विशिष्ट रूप से मानव बन जाता है इसलिए उसे संस्कृति धारक जिव भी कहा जाता है क्योकि संस्कृति प्रकृति की देन नहीं अपितु समाज की देन है। संस्कृति को यदि हम परिभाषित करें तो विद्वानों के अनुसार संस्कृति ऐसे परम्परागत विश्वाश के संगठित समूह को कहते हैं जो कला एवं कलाकृतियों में प्रतिबिम्बित होते हैं, परम्परा द्वारा चलते रहते हैं और किसी मानव समूह की विशेषता को चित्रित करता है। संस्कृति हमारे जीवनक्रमों, चिंतन पद्धतियों, दैनिक सम्पर्को, कला, साहित्य, धर्म, मनोरंजन, विनोद आदि में हमारी प्रकृति की अभिव्यक्ति हैं। अतः हम यह कह सकते हैं कि अपने पूर्वजों से प्राप्त ज्ञान, विश्वाश, कला, नैतिकता, रीति – रिवाज, परम्परा आदि के एकीकृत व्यव्हार प्रतिमानों का सम्पूर्ण योग है संस्कृति। अर्थात संस्कृति आदर्शात्मक होते हुए भी व्यक्ति की व्यक्तिगत नहीं अपितु सामाजिक विरासत होती है।

घुमंतू या जनजातीय समाज का नाम लेते ही हमारे सामने एक ऐसे समाज की छवि उभरती है जो निरंन्तर घूमते रहते हैं, जिनकी रंग बिरंगी जीवन शैली है. उनका खास तरीके का लोकगीत है और परंपराएं हैं. जिनका हिंदुस्तान की विरासत को संजोने में अहम योगदान रहा है।भारत में घुमंतू विमुक्त जातियों के ८४० समुदाय है जिसकी जनसंख्याँ लगभग २० करोड़ है। प्राचीन काल से ही इन्हें अलग अलग नामों से सम्बोधित किया जाता है। इन्हें जनजाति, आदिम, आदिवासी , वनवासी, गिरिजन, अनुसूचित जनजाति आदि नामों से पुकारा जाता है। इन्हें आदिम या आदिवासी इसलिए कहा जाता है कि ये देश के प्राचीनतम निवासी मने जाते हैं। देश के विभिन्न हिस्सों में ये घुमन्तु जनजातियां सदा से निवास करती आयी है, जो अपनी कला संस्कृति के माध्यम से भारत की कला और संस्कृति को जीवित रखे हुए हैं।

घुमंतू समुदाय के नृत्य के विषय में अध्ययन करने से ये ज्ञात होता है कि घुमन्तु जातियों की भौगोलिक, सामाजिक, धार्मिक एवं सांस्कृतिक विशेषताओं के आधार पर इनके लोकनृत्यों में भी सांस्कृतिक विविधता प्रत्यक्ष रूप प्रतिबिम्बित होती है। नृत्यों में प्रतिबिंबित ये सांस्कृतिक विविधता उसमें समाहित तत्वों को प्रदर्शित करती है।

विषय वस्तु– जिस धरती पर विभिन्न संस्कृति एवं परंपराओं का मेला होता है वही भारत है। इस देश की हर प्रांत की अपनी विशेषता है। अपनी संस्कृति है , जो उस प्रांत की लोक कथाओं में नजर आती है। सभी प्रांतों की अपनी लोक संगीत व लोक नृत्य होते हैं। इसमें वहां की परंपराओं और समुदायों की भावनाओं की अभिव्यकित देखने को मिलती है। किसी देश की लोक–संस्कृति का महत्व उस देश के जीवन में निर्विवाद है । उसका अपना स्वतंत्र प्रवाह होता है, जो निरंतर प्रभावित हुआ करता है और जो बड़ी कठिनता और युगों के प्रयत्न से किंचित् परिवर्तित किया जा सकता है ।

यह कहना अतिशयोक्ति नहीं है कि हमारी भारतीय संस्कृति का मूल आधार भारत की लोक कलाएँ है। क्योंकि भारत एक ऐसा देश है जहां पर सबसे अधिक लोक कलाओं का जन्म हुआ है। भारत की लोक कलाओं की जब हम बात करतें हैं तो इसके कई प्रकार हैं – लोक साहित्य ,लोक नृत्य , लोक संगीत , लोक रंगमंच , चित्रकला, आदि। इन कलाओं में कई ऐसी कलाएँ हैं , चाहे वो नृत्य हो , संगीत हो, अथवा भारतीय व्यंजन हो, यदि हम गौर करें तो हमें इनके विषय में भारतवासी होने के बावजूद भी नहीं जानते किन्तु इन कलाओं का स्वरूप इतना विराट है कि यह किसी प्रकार के परिचय की मोहताज नहीं हैं। लोक नृत्यों में ग्रामीण भारत की माटी की महक आती है और इसी महक से इन नृत्यों की सुंदरता बढ़ जाती है। कोई भी त्यौहार हो या खुशी का मौका जैसे विवाह , जन्म इत्यादि इन नृत्यों के बिना संपूर्ण नहीं होता।

जनजातीय नृत्य के भारतीय लोक संस्कृति पर प्रभाव देखें तो स्पष्ट होता है कि जनजातीय समाज ने नृत्य के माध्यम से लोक संस्कृति के विरासत को संजो के रखने का कार्य कर रहे हैं। जनजातीयों में नृत्य की प्रेरणा प्रकृति और जीवों से मिली है, बुनियादी रूप से उल्लसित मानव ने अपनी खुशी का इजहार गीत संगीत के माध्यम से किया है। आदिम समूहों में नृत्य एक सामूहिक क्रिया–कलाप है, इसलिये नृत्य उनकी सामूहिक भावना के प्रतीक है।जनजातीय लोक नृत्य एवं लोक गीत विशेष आकर्षक हैं। विवाह आदि प्रसंगों पर उनका आयोजन किया जाता है। होली उनके लिए एक महत्वपूर्ण त्यौहार है। उस दिन और उसके पूर्व भी आकर्षक नृत्य करते हुए देखे जा सकते हैं।जनजातीय समाज उत्सव प्रचलित हैं, जिनका सांस्कृतिक महत्व है। प्रत्येक उत्सव में कुछ लोकगीत गाये जाते हैं। ये गीत प्रायः नृत्य परक होते हैं।

मूल विषय–

वैदिक–वांग्मय में जनजातीय नृत्य परंपरा
जनजातीय नृत्य में समाहित तत्व
मध्यप्रदेश की प्रमुख जनजातीय नृत्य

वैदिक–वांग्मय में जनजातीय नृत्य परंपरा– जनजातीय नृत्य अर्थात घुमंतू समाज की नृत्य परम्परा और वेदों में वर्णित नृत्य परम्परा की ओर दृष्टि डालें तो स्पष्ट रूप से ये प्रत्यक्ष होता है कि वेदों में भी नृत्य को आनंद के साधन के रूप में ही देखा जाता था। वेदों में यजुर्वेद की बाजसनेय संहिता के पुरुषसूक्त में लिखा है – नृत्याय सूतं गीताय शैलूषम। अथर्ववेद

ISSN NO.-2347-2944 (Print)
e-ISSN NO.-2582-2454 (Online)
Vol.-15, No.- I, Issues-23, YEAR- Jan.-March-2022

के पृथिवी सूक्त के अध्याय १२, प्रकरण 1 तथा मंत्र ४१ में भी गायन और नृत्य का उल्लेख है। वैदिक साहित्य में एक स्थान पर विचित्र बात लिखी गयी है– 'गन्धर्वसंगीतवाद्यादिजनित प्रमोदं प्राप्नोति गन्धर्वः स्वर्गगायकः। अर्थात् गन्धर्व जन वाद्य आदि को बजाकर मोद और आनन्द प्राप्त करते हैं और देवताओं को आनंद की अनुभूति कराते हैं। अतः गन्धर्वों को स्वर्ग का गायक कहा जाता है। अथर्ववेद के ही एक मंत्र में कहा गया है– 'आनृत्यनतः शिखण्डिनः गन्धर्वस्याप्सरापतेः।' (५६३७६७) सम्पूर्ण मन्त्र का आशय है कि उर्वशी, धृताची, रम्भा, तिलोत्तमा, मेनका आदि अप्सराओं के गन्धर्व पति सिर पर मोर पर मुकुट लगाकर नृत्य करते हैं।

अथर्ववेद में एक स्थान पर कहा गया है – यस्याय गायन्ति नृत्यन्ति भूम्याम् मृत्योर्व्यैलवा अर्थात् आनन्दभरी किलकारियों को अपने मधुर कंठ से निनादित करने वाले लोग जिस भूमि में गाते और नृत्य करते रहते हैं, वह भूमि धन्य है। इससे ये स्पष्ट होता है कि वैदिक काल में भी नृत्य और नर्तक को कितना महत्व दिया जाता था। और आनंद के साथ नृत्य को भूमि से सम्बंधित मन जाता था।

छान्दोग्य उपनिषद् में सामवेद से सम्बन्धित एक कथा है। उसमें कहा गया है कि महर्षि श्रृंगी ने देवकी पुत्र श्रीकृष्ण को वेदान्त शिक्षा का उपदेश करते हुए गायन और नर्तन की विधियों की दीक्षा दी थी। उस विधि का नाम छालिक्य पडा। श्रीकृष्ण छालिक्य नृत्य के अधिष्ठाता थे। वेणु–वादन में सामगान के साथ ही श्रीकृष्ण ने इस नृत्य का प्रयोग गोपियों के साथ किया था। उसके बाद यादवों ने इस परम्परा का प्रवर्तन किया। आचार्य नन्दिकेश्वर के अपने ग्रंथ अभिनय दर्पण में भी इस विचार को प्रकारान्तर से प्रस्तुत करते हुए कहा है– पार्वतित्वनुशास्ति स्म लास्यं बाणात्मजामुपाम तथा द्वारावती गोप्यस्ताभिः सौराष्ट्रयोषितः। अर्थात्ः पार्वती ने बाण की पुत्री उषा को लास्य की शिक्षा दी, जिन्हेंने सौराष्ट्र में द्वारका की अन्य गोपियों को लास्य नृत्य की शिक्षा दी थी। स्पष्ट है कि सौराष्ट्र में नृत्य का प्रसार बहुत प्राचीन काल में ही हो गया था।

वैदिक सभ्यता में समन नामक पर्व का सर्वाधिक उल्लेख किया गया है। समन एक प्रकार का सांगीतिक मेला था, जहाँ आमोद के लिए नारियाँ जाती थीं। युवा–युवतियाँ साथ मिलकर सह–नृत्य करते हुए फैले मैदानों की ओर दौड लगाते थे, मृदंग धमक उठते थे, तरुण–तरुणियाँ एक दूसरे का हाथ पकड कर नाचने लगते थे। युवा–वर्ग का यह आमोद–पर्व नृत्य–गान से परिपूर्ण तथा बहुत आकर्षक होता था।

वैदिक सभ्यता में सत्र–यज्ञ हुआ करते थे। यज्ञ की समाप्ति पर बडा उत्सव मनाया जाता था। उत्सव में नृत्य–गान की धूमधाम रहती थी। वैदिक काल में नृत्य–गायन का समाज में महत्वपूर्ण स्थान था। बिना नृत्य–गान के कोई भी बडा उत्सव समाज में सम्पन्न नहीं होता था, वैदिक काल में भी गायन–वादन करने वाले वर्गों के नाम सूत, शैलूष, कृशाश्व, शिलालि, नट आदि थे। काल की गति के साथ सभ्यता परिवर्तित होती गयी और समाज में कलाजीवी लोगों के नाम भी बदलते गये।

वेदों में कथा है कि जम्बूद्वीप, अर्थात पृथिवी जिसकी रक्षा लोकपाल किया करते थे, दैत्य, दानव, गन्धर्व, यक्ष, राक्षस तथा उरगों अर्थात् नागों से आक्रान्त हो गया था। ऐसी स्थिति देखकर देवताओं ने इन्द्र के नेतृत्व में पितामह ब्रह्माजी से याचना करते हुए कहा– क्रीडनीयकमिच्छामो दृश्यंश्रव्यं च यत्भवेद्। हे पितामह! हम लोग मनोरंजन का कोई ऐसा क्रीडायुक्त साधन चाहते हैं, जिसमें दृश्य अर्थात् देखने योग्य श्रव्य अर्थात् सुनने योग्य तत्त्व भी सन्निहित हों। इसके पश्चात ही धर्म, अर्थ और यश देने वाले नृत्य की रचना हुई। इससे यह सिद्ध है कि नृत्य प्रारम्भ से ही मनोरंजन के साधन के रूप में विद्यमान हैं। जो आज भी सभी समाज और उनकी संस्कृति को परिलक्षित कर रहा है अतः यह कहा जा सकता है कि प्रत्यक्ष रूप नहीं किन्तु अप्रत्यक्ष रूप से वेदों में यत्र – तत्र ऐसे जनसमूहों का वर्णन हैं जो समूहों खुले मैदान में नृत्य किया करते थे और उसी के माध्यम से समाज में आनंद का प्रसार किया करते थे।

जनजातीय नृत्य में समाहित तत्व– जनजातीय नृत्य में समाहित तत्व से तात्पर्य है वह प्रत्येक वस्तु जो नृत्य को एक सजीव साकार रूप प्रदान करता है जिसे देख नर्तक को भी आनंद की अनुभूति होती है और उसमें संस्कृति की झलक प्रयाप्त रूप में परिलक्षित होता है। उन तत्वों को हम निम्नलिखित रूप से विभाजित कर भारतीय संस्कृति का एक शास्वत रूप देखतें हैं।

जनजातीय नृत्य की वेशभूषा– जनजातीय नृत्य के सौंदर्य का एक प्रमुख आधार उनकी वेशभूषा है जो उनकी अपनी अलग पहचान निर्मित करता हैं। वेशभूष जहाँ विभिन्न जनजातियों की पहचान है वहीं विभिन्न नृत्यों के निजत्व का आधार भी है। जनजातीय नृत्यों की वेशभूषा जहाँ नृत्य के सौन्दर्य को निखाएतें हैं वहीं इसके पीछे छुपे आध्यात्म, जनजातियों की उदारता का परिचायक भी बनती है। यथा गौर नृत्य का मुखौटा गौर के सींग, पक्षियों के पंख एवं कौड़ियों की झालर से निर्मित है जो यह व्यक्त करता है की इस मुखौटे में पूरी सृष्टि समाहित है।

वेशभूषा के अंतर्गत जनजातियों के वस्त्र, नृत्य में उपयोग आने वाले अलग अलग प्रकार के आभूषण, उनके शरीर के विभिन्न अंगों पर गुदाए सुन्दर गुदना जो नर्तक की सुंदरता में चार चाँद लगा देता है। वाद्ययंत्र जनजातीय नृत्य के संगीत आनंद

ISSN NO.-2347-2944 (Print)
e-ISSN NO.-2582-2454 (Online)
Vol.-15, No.- I, Issues-23, YEAR- Jan.-March-2022

की अनुभूति के लिए विविधता का होना अत्यंत आवश्यक है। जनजातीय नृत्य के संगीत में स्वर लय और ताल को लेकर विविधता उत्पन्न की गई है। जिस पर निर्भर होकर ये जनजाति समाज झूम – झूम कर नृत्य करके आनंद को प्राप्त करते हैं। क्योंकि जनजातीय नरियों का संगीत जनजातीय मनोभावों की ध्वन्यात्मक अभिवयक्ति है, क्योकि इनका संगीत मौलिक है सीधे सरल और सामान्य स्वर संरचना को समाहित किए इनके संगीत मानव ह्रदय को आसानी से प्रभावित कर लेते हैं।

जनजातीय नृत्य में स्थान और समय– जनजातीय नृत्य में स्थान और समय को अत्यन ही महत्वपूर्ण मन गया है। जनजातीय नृत्य प्रायः खुले स्थानों पर सामूहिक रूप में होते है, अतः उनको ज्यादा स्थान की आवश्यकता होती है। जनजातीय नृत्य के क्रियान्वयन के लिए समय की आवश्यकता पड़ती है। यह समय नृत्य की गणना करने में मदद करता है। किंतु जनजातीय नृत्यों में समय की कोई निश्चित सीमा तय नहीं होती अर्थात यह पूरी पूरी रात व कई दिनों तक चलते रहते हैं।
जनजातीय नृत्यों के इन तत्वों के आधार पर हम यह कह सकते है कि जनजातीय नृत्य के ये तत्व उनके नृत्यों की सुंदरता को और अधिक बढ़ता है और भारतीय सांस्कृतिक धरोहर को संजो कर रखने में अत्यधिक सहायक सिद्ध होता है।

मध्यप्रदेश की प्रमुख जनजातीय नृत्य– घुमन्तु अर्थात जनजातीय समाज की संस्कृति जीवंत और रंगीन है। उन समुदायों का अपना एक सामाजिक–सांस्कृतिक स्थान है। मध्यप्रदेश के जनजातियों की संस्कृति की बात करें तो राज्य के लगभग एक तिहाई हिस्से में जनजातीय समुदाय के लोग रहते हैं। सभी जनजातीय और गैर–जनजातीय समुदायों का अपना सामाजिक–सांस्कृतिक स्थान है। मध्य प्रदेश कई जनजातियों का घर है, जिसके परिणामस्वरूप उनकी खुद की परंपरा को समाहित किया गया है। गोंड जनजाति, भील जनजाति और ओरांव जनजाति तीन अलग–अलग जनजाति मध्य प्रदेश की संस्कृति को प्रभावित करती हैं। इन जनजातीय समूहों की अपनी विशिष्ट भाषाएं, कला रूप और उत्सव हैं। भगोरिया, मड़ई आदि त्योहारों को जनजातीय समूहों द्वारा मनाया जाता है। सेला, काकसार, गौर और कर्मा आदि नृत्य, जनजातियों द्वारा आनंदित कुछ नृत्य रूप हैं।सच्चे अर्थों में, अपने संगीत की असाधारणता और नृत्य की लय के लिए पहचानी जाती है। नृत्य मंडली के परिष्कृत कदमों से उन्माद का माहौल बन जाता है। बस्तर क्षेत्र के रंग–बिरंगे मारिया गोंड नृत्य करके अपनी महत्वपूर्ण घटनाओं को प्राप्त करते हैं। सबसे लोकप्रिय नृत्य रूप उत्कृष्ट शादी का नृत्य है, जिसे गौर कहा जाता है। जनजातीय नृत्य जैसे फाग, लोटा नृत्य और विभिन्न स्टिल्ट नृत्य शैली भी प्रचलित हैं। रंगीन कपड़े पहने, जनजातीय आबादी नृत्य और मधुर संख्या में इस प्रकार सामाजिक–राजनीतिक और सांस्कृतिक परिदृश्यों के विभिन्न पहलुओं को दर्शाती है।

मध्यप्रदेश की प्रमुख जनजातीय नृत्य–

सैला नृत्य– सैला नृत्य गोंड, बैगा, परधान आदि जनजातियों में किया जाता है। यह नृत्य आपसी प्रेम एवं भाई–चारे का प्रतीक है। ' सैला ' का अर्थ' शैल ' या' डण्डा ' होता है।यह नृत्य हाथ मेंडंडा किया जाता है इसलिए इसे सैला नृत्य कहा जाता है। इसमें स्त्री और पुरुष दोनों बराबरी से हिस्सा लेते हैं। सैला नृत्य चाँदनी रातों में किया जाता है, इसकी शुरुआत शरद पूर्णिमा से होती है। इस नृत्य का आयोजन अपने आदिदेव को प्रसन्न करने हेतु किया जाता है। इसमें नर्तक सादी वेशभूषा में हाथों में डण्डा लेकर एवं पैरों में घुंघरू बांध कर गोल घेरा बनाकर नृत्य करते हैं। इस अवसर पर दोहे भी बोले जाते हैं। सैला नृत्य की परिणति सर्प नृत्य के रूप में होती है। मांदर इस नृत्य का मुख्य वाद्य होता है। ग्रामों को सांस्कृतिक रूप से जोड़ने में सैला नृत्य की अहम भूमिका है। इस नृत्य का पुराना नाम ' सैला–रीना' है।

करमा नृत्य– करमा नृत्य मध्य प्रदेश के गोंड और बैगा जनजाति का प्रमुख नृत्य है। जो मंडला के आसपास क्षेत्रों में किया जाता है। करमा नृत्य गीत कर्म देवता को प्रशन्न करने के लिए किया जाता है। यह नृत्य कर्म का प्रतीक है। जो लोकजीवन की कर्म मूलक गतिविधियों को दर्शाता है। यह नृत्य विजयदशमी से प्रारंभ होकर वर्षा के प्रारंभ तक चलता है। ऐसा माना जाता है कि करमा नृत्य कर्मराजा और कर्मरानी को प्रसन्न करने के लिए किया जाता है इसमें प्रायः आठ पुरुष व आठ महिलाएं नृत्य करती है। ये गोलार्ध बनाकर आमने सामने खड़े होकर नृत्य करते है। एक दल गीत उठता है और दूसरा दल दोहराता है द्य वाध्य यन्त्र मादल का प्रयोग किया जाता है नृत्य में युवक युवती आगे पीछे चलने में एक दुसरे के अंगुठे को छूने की कोशिश करते है। बैगा जनजातियों के करमा को बैगानी करमा कहा जाता है ताल और लय के अंतर से यह चार प्रकार का होता है। 1) करमा खरी 2) करमा खाय 3) करमा झुलनी ४) करमा लहकी।

परधौनी नृत्य– यह बेगा जनजातियों द्वारा विवाह के अवसर पर बारात अगवानी के लिए किया जाने वाला लोक नृत्य है इस नृत्य का मुख्य उद्देश्य प्रसन्नता की अभिव्यक्ति है नृत्य में वर पक्ष की ओर से एक हाथी बना कर चला जाता है यह एक अनुष्ठान के रूप में होता है यह बेगा जीवन चक्र का एक अटूट हिस्सा माना जाता है

बिलमा नृत्य– बिलमा नृत्य मध्यप्रदेश एवं छत्तीसगढ़ प्रदेश में निवास करने वाले गोंड एवं बैगा जनजाति के लोगों द्वारा किया जाता है। बिलमा का शाब्दिक अर्थ दो समूहों का मिलना होता है।बिलमा नृत्य समूहों में किया जाने वाला नृत्य है, जो

ISSN NO.-2347-2944 (Print)
e-ISSN NO.-2582-2454 (Online)
Vol.-15, No.- I, Issues-23, YEAR- Jan.-March-2022

शरद–ऋतु के प्रारंभ में दशहरे के अवसर पर किया जाता है। इस नृत्य में प्रायः कुंवारे युवक एवं युवतियां भाग लेते हैं।बिलमा नृत्य में गावों में युवक–युवतियों के अलग–अलग समूह बने होते हैं। गावों में बने इन समूहों को चक कहा जाता है। ये चक (समूह) दूसरे गांव में बने समूहों के साथ नृत्य करने जाते हैं। नृत्य में कुंवारी लड़कियां विशेष साज–श्रृंगार करके नृत्य में भाग लेती हैं। और नृत्य के दौरान अपने पसंद के युवक का चुनाव करती हैं।

भगोरिया नृत्य– मध्यप्रदेश के झाबुआ और अलीराजपुर क्षेत्र में निवास करने वाले भीलो का भगोरिया नृत्य, फागुन से ७ दिन पूर्व प्रारम्भ होता है। भगोरिया में तीन मुख्य दिन होते हैं – प्रथम दिन गुगलिया हाट है, जिसमें महिला और पुरुष अपने उपयोग की वास्तु खरीदते है इसी भगोरिया हाट के समय बाजार में गाओं के सम्मानित व वृद्ध व्यक्ति द्वारा भगौरा देवता की पूजा की जाती है। उसके पश्चात् सामूहिक नृत्य गोल – गधधेडो का आयोजन होता है जिसे युवक युवतियों द्वारा किया जाता है और प्रसाद वितरण किया जाता है। तीसरे दिन मेला वीरान हो जाता है , जिसे उजड़िया भी कहते हैं इसके माध्यम से अविवाहित युवक युवतियएक दूसरे के संपर्क में आते हैं आकर्षित होते हैं और जीवन सूत्र में बंध जाते हैं। भगोरिया हाट केवल हाट ना होकर युवक–युवतियों के मिलन मेला है।

दशहरा नृत्य– बैगा जनजाति यद्यपि दशहरा त्योहार नहीं मनाते हैं। किन्तु विजयदशमी से प्रारंभ होने के कारण इस नृत्य का नाम दशहरा नृत्य पड़ा है इस नृत्य को बैगा आदिवासियों का आदि नृत्य कह सकते हैं दशहरा नृत्य अन्य नृत्यों का द्वार है एक तरह से दशहरा नृत्य बैगा वासियों में सामाजिक व्यवहार की कलात्मक सम्पूर्ति है।

थापटी नृत्य– थापटी कोरकुओ का पारंपरिक लोक नृत्य है। इस नृत्य को चौत्र – वैसाख के समय किया जाता है। अन्य जनजातीय नृत्य की ही भांति यह नृत्य भी सामूहिक रूप से किया। इसमें स्त्री और पुरुष दोनों सामूहिक नृत्य करते हैं युवतियों के हाथों में चिरखोरा वाद्ययंत्र होता है युवक के हाथों में एक पंछा और झांझ वाद्य यंत्र होता है ये गोलाकार परिक्रमा करते हुए दाएं बाएं झुक कर नृत्य करते हैं थापटी के मुख्य वाद्य यंत्र बांसुरी और ढोलक है ग्राम मल्हारगढ़ खंडवा के श्री मौजी लाल कोरकु थापटी नाच के प्रतिष्ठित कलाकार है।

लेहंगी नृत्य– लेहंगी नृत्य मध्य प्रदेश के 'बंजारा' और 'कंजर जनजाति का एक लोकप्रिय लोक नृत्य है और यह मानसून की अवधि के दौरान किया जाता है। 'बंजारा' जनजाति 'राखी' के त्योहार के दौरान भी इस नृत्य को करती है। युवा पुरुषों ने अपने हाथों में लाठी पकड़ लेते हैं और नृत्य करते समय एक–दूसरे को हारने की कोशिश करते हैं।

तृतीली नृत्य – तृतीली नृत्य मध्य प्रदेश में 'कमर' जनजाति का एक लोक नृत्य है। जनजाति की दो या तीन महिलाएं जमीन पर बैठकर नृत्य प्रदर्शन शुरू करती हैं। छोटे धातु के झांझ जिन्हें 'मन्जिरस' कहा जाता है, उनके शरीर के अलग–अलग हिस्सों से बंधे होते हैं।

हुलकी नृत्य– हुलकी पाटा नृत्य मुरिया जनजाति में प्रचलित है इसमें नृत्य के साथ ही गीत विशेष आकर्षण रखते हैं इस नृत्य में लड़के लड़कियां दोनों ही सामूहिक रूप से भाग लेते हैं। इसमें यह गाया जाता है की राजा रानी कैसे रहते हैं अन्य गीतों में लड़के लड़कियों की शारीरिक संरचना के प्रति सवाल जवाब होते हैं जैसे ऊंचा लड़का किस काम का ? जवाब सैमी तोड़ने के काम का ! यह निरंतर किसी समय सीमा में बंधा हुआ नहीं है कभी भी नाचा गया जा सकता है।

इन नृत्यों के अतिरिक्त मध्यप्रदेश के जनजातीय समाज में मुरिया नृत्य, बारदी नृत्य,अहिरी नृत्य, जवारा नृत्य आदि नृत्य परम्परा प्रसिद्द जिसे जनजातीय समाज द्वारा अलग अलग समय में, अलग अलग पर्व– त्योहारों के अवसर पर किया जाता है। यथा – बारदी नृत्य को 'पूर्णिमा' के दिन तक 'दिवाली' की शुरुआत में प्रस्तुत किया जाता है। फूल पाटी नृत्य होली के त्योहार के समय प्रदर्शित किया जाता है। अहिरी नृत्य ग्वालियर के पशुपालकों का एक चिह्न है। इस नृत्य में धार्मिक अर्थ भी हैं। ग्वालियर के विभिन्न समुदाय, जो इस नृत्य को करते हैं, भगवान कृष्ण के वंशज माने जाते हैं।

उपसंहार– अतः हम देखते हैं कि भरतीय लोक संस्कृति श्रमशील समाज की संवेदनात्मक आवेगों की अभिव्यक्ति रही है। धरती के हर हिस्से के मूल निवसियों ने अपनी लोक संस्कृति की रक्षा की है। लोक संस्कृति प्रकृति की गोद में पनपती है।जनजातीय नृत्यों में समाहित विभिन्न सांस्कृतिक तत्व अपनी विशेषताओं से नृत्य को प्रभावित करते हैं और समग्र रूप दर्शक को अपनी विशेषता और रोचकता से परिचित करते हैं।

हमेशा से ही भारत की लोक कलाएं भारत की सांस्कृतिक और परम्परागत प्रभावशीलता को अभिव्यक्त करने का माध्यम बनती आरही हैं। भारत देश के विभिन्न राज्यों और संघ राज्य क्षेत्रों की अपनी विशेष सांस्कृतिक और पारम्परिक पहचान है, जो वहां प्रचलित लोक कला के भिन्न–भिन्न रूपों में दिखाई देती है। भारत के हर प्रदेश में कला की अपनी एक विशेष शैली और पद्धति है जिसे लोक कला के नाम से जाना जाता है। परम्परागत कला जिसे जनजातीय कला रूप में वर्गीकृत किया गया है। भारत की लोक और जनजातीय कलाएं बहुत ही पारम्परिक और साधारण होने पर भी इतनी सजीव और प्रभावशाली हैं कि उनसे

ISSN NO.-2347-2944 (Print)
e-ISSN NO.-2582-2454 (Online)
Vol.-15, No.- I, Issues-23, YEAR- Jan.-March-2022

देश की समृद्ध विरासत का अनुमान स्वतः ही हो जाता है।

संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. जनजातीय विकास– विविध पक्ष ,संपादक – राकेश सिंह, उदय सिंह राजपूत, जयन्त कुमार बेहेरा स्वराज प्रकाशन नई दिल्ली प्रथम संस्करण–२०१८
2. लोक साहित्य एवं लोक संस्कृति : परम्परा की प्रासंगिकता एवं सामाजिक परिप्रेक्ष्य संपादक–डा.वीरेन्द्रसिंह यादव संस्करण–प्रथम.2012, ओमेगा पबिलकेशन्स, 43784,एळ4 एजे.एम.डी. हाउस,मुरारी लाल स्ट्रीट,अंसारी रोड, दरियागंज, नई दिल्ली–110002
3. भारत की लोक संस्कृति – हेमन्त कुकरेती, प्रभात प्रकाशन दृ 2018
4. लोक संस्कृति की आत्मा– नर्मदेश्वर चतुर्वेदी, सम्मेलन पत्रिका, लोक संस्कृति अंक, पृष्ठ–120. हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग. १९७३.
6. डॉ० जगदीश व्योम का लेख– ''बाल साहित्य का केन्द्र लोक साहित्य''– कादम्बिनी मासिक पत्रिका – जून– १९९८, पृष्ठ–८०.
7. भारतीय संस्कृति में लोक जीवन की अभिव्यक्ति, महामहोपाध्याय गोपीनाथ कविराज, एम.ए., सम्मेलन पत्रिका, लोक संस्कृति अंक, पृष्ठ–२४. हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग. १९७३.

*****